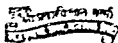


प्रकाराक  
भारती-मण्डार  
पुस्तक-प्रकाराक चीर विद्येता  
रामपाद, बनारस पिरी

द्वितीय संस्करण  
१)



## परिचय

हमारा मानस शीघ्र ही संस्कारों का समता किया जाता है। तुम्हारी करुणा-शक्ति ने यह प्रति दिन अपनी सीमा का विस्तार कर रहा है। हमारी पुराना चिन्ता है कि यह अतीत हो जाय और पृथ्वी के पार्श्व में लहराना हुआ उसे अपनी भर्त्सना का विश्वास दिलाता रहे। संसार के उपवन को यह सरस बनाये रहे, किन्तु उससे निराला रहे। ऐसा न होने से प्रलय की सम्भावना जो है !

जो हो, उसे भी आशा है कि तुम उसे अपने लिए आ रहे हो। इसी में यह तरङ्गों के रूप में अपने बाहु तुम्हारे स्वागत के लिए बढ़ रहा है। बन्दु-राशि के रूप में अपनी प्रीति उठा रहा है। शक्तियों के रूप में उसने भयान शील रखे हैं। उनमें मोतियों के आभूषण शोभित हो रहे हैं। और, कमलों के रूप में उसने अपने सारस सहाय नेत्र तुम्हारी शोभा देखने के लिए उन्मीलित कर रखे हैं। हे परमपुरुष, तुम अपनी परा प्रकृति के साथ आकर उसकी आशा और अभिलाषा पूरी करो। उसे अपना निवास-स्थान बनाओ और ऐसा करो कि भावी सन्तानें उसे भय कर सदैव अमृतपान करती रहें।

अहा ! वह देखो, उसके हृदय से प्रेमाग्नि का धूम उठ रहा है और एक छोटे से मेघ का आकार धारण करके अपने अमृत किन्तु स्निग्ध निनाद से तुम्हारी अव्यक्तता को व्यक्त करना चाहता है। यह मयूर उस आराध को सुन कर आनन्द में उन्नत हो नाच उठा है क्या उस कृपा परोक्ष





की गम्भीर ध्वनि तुम्हारे चरणों तक पहुँच न सकेगी? जो रस उसमें ओत प्रोत भरा है वह तो केवल उसी के हार्दिक भावों से सम्बद्ध है। इसी प्रकार उससे दीप्ति की जो उज्वल रेखा प्रकट होती है वह भी उसी की साधना की स्फूर्ति है। क्या उस ज्योति से तुम्हारे अनन्त पथ पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है?

इस बात को तुम्हीं जान सकते हो। वह शृण्वण पयोद न यह कहने का साहस करता है, न करना चाहता है, न कर सकता है। और न उसे इस बात का अभिमान है कि उसकी शृष्टि से हमारे मानस की सीमा का विस्तार होगा; अथवा वह उत्साह का उपराम करके हरियाली को उत्पन्न करेगा। यह तो तुम्हारी करुणा-शृष्टि का ही काम है। हाँ, यदि उस पात्र के द्वारा भी तुम्हारी करुणा के दो चार कण बरस गये तो वह भी कृतकृत्य होकर अपने को धन्य समझेगा।

तब वह चाहता क्या है? केवल यही ही कि मयूर और कोकिलों के साथ अनुरागी चातक भी उसकी आकांक्षा की पूर्ति के लिए एक बार आकारा को गुँजा के—“पी कहाँ” कह कर तुमको पुकार उठें और उसकी क्षुद्र वारि-धारा तुम्हारे पाय के लिए गिर कर अपना जीवन सकल करे। इसी में उसकी सार्थकता है।

और? बस।

धीकारी  
प्रभाश्री. ७१

मेथिलीशरण गुप्त

## सूची

प्राथना	१ प्रेम-परिचय	२१
साधना	२ आकांक्षा	२२
सेवा	४ कृपालु कर्णधार	२३
रहस्य	५ अस्थायित्व में स्थायित्व	२४
कुटी और प्रासाद	६ आगुरता	२५
भूल	७ संसार की भूल	२६
निर्गुण बीजा	८ कच्चे घट में अमृत	२७
लज्जा	९ बंधन की आवश्यकता	२८
स्वप्न मात्र	१० आत्म-रक्षा	२९
साहस	११ केवल तुम्हीं	३०
व्यर्थ की खोज	१२ सफल-काम	३१
सहारा	१३ क्रय-विक्रय	३२
धनुराग-विराग	१४ पारम्यिक मूल्य	३३
प्रेम की प्रबलता	१५ निर्द्वेष निर्माण का सफलता	३४
मोहन	१७ धर्मभव	३५
सगठन	१८ सम्कार	३६
मानन्द गीत	१९ महत्ता	-
पकृति और कला	२० जगत् का वागल	-

मुम्बारी भाषा	३९	समय की सहायता	३१
अभिमान	४०	मिशन वेला	३४
अधस्तात्	४१	सुखन	३५
शब्दा	४२	त्यता	३६
ओझाई और असाधना	४३	अनन संगीत	३७
दुष्प्रायोग	४४	अभिमान	३८
अनना, पराणा	४५	सुख	३९
आनन्द की लोच	४६	प्रदरी	४०
बन्धन	४७	मनिरुक्त	४१
इलायतीय स्वार्य	४८	जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति	४२
कर्मों के अर्थ	४९	अभीष्ट आदेश	४३
स्वप्न	५०	संकीर्ण अर्थ	४४
मुम्बारी भाषा	५१	अन विधि	४५
मिहान्तली कर्म	५२	माता	४६
मन्त्रा मन्त्र	५३	सुख स्वप्न आदि ही	४७
प्रसाद	५४	रहस्य का अर्थकर्म	४८
अष्टमी अर्थकर्म	५५	अभिनिवेश	४९
दुष्प्रायोग अर्थ	५६	अर्थ	५०
अनना की अर्थकर्म	५७	अर्थ	५१
अनना की अर्थकर्म	५८	अर्थ	५२
अनना की अर्थकर्म	५९	अर्थ	५३
अनना की अर्थकर्म	६०	अर्थ	५४
अनना की अर्थकर्म	६१	अर्थ	५५
अनना की अर्थकर्म	६२	अर्थ	५६
अनना की अर्थकर्म	६३	अर्थ	५७
अनना की अर्थकर्म	६४	अर्थ	५८
अनना की अर्थकर्म	६५	अर्थ	५९
अनना की अर्थकर्म	६६	अर्थ	६०
अनना की अर्थकर्म	६७	अर्थ	६१
अनना की अर्थकर्म	६८	अर्थ	६२
अनना की अर्थकर्म	६९	अर्थ	६३
अनना की अर्थकर्म	७०	अर्थ	६४
अनना की अर्थकर्म	७१	अर्थ	६५
अनना की अर्थकर्म	७२	अर्थ	६६
अनना की अर्थकर्म	७३	अर्थ	६७
अनना की अर्थकर्म	७४	अर्थ	६८
अनना की अर्थकर्म	७५	अर्थ	६९
अनना की अर्थकर्म	७६	अर्थ	७०
अनना की अर्थकर्म	७७	अर्थ	७१
अनना की अर्थकर्म	७८	अर्थ	७२
अनना की अर्थकर्म	७९	अर्थ	७३
अनना की अर्थकर्म	८०	अर्थ	७४
अनना की अर्थकर्म	८१	अर्थ	७५
अनना की अर्थकर्म	८२	अर्थ	७६
अनना की अर्थकर्म	८३	अर्थ	७७
अनना की अर्थकर्म	८४	अर्थ	७८
अनना की अर्थकर्म	८५	अर्थ	७९
अनना की अर्थकर्म	८६	अर्थ	८०
अनना की अर्थकर्म	८७	अर्थ	८१
अनना की अर्थकर्म	८८	अर्थ	८२
अनना की अर्थकर्म	८९	अर्थ	८३
अनना की अर्थकर्म	९०	अर्थ	८४
अनना की अर्थकर्म	९१	अर्थ	८५
अनना की अर्थकर्म	९२	अर्थ	८६
अनना की अर्थकर्म	९३	अर्थ	८७
अनना की अर्थकर्म	९४	अर्थ	८८
अनना की अर्थकर्म	९५	अर्थ	८९
अनना की अर्थकर्म	९६	अर्थ	९०
अनना की अर्थकर्म	९७	अर्थ	९१
अनना की अर्थकर्म	९८	अर्थ	९२
अनना की अर्थकर्म	९९	अर्थ	९३
अनना की अर्थकर्म	१००	अर्थ	९४

विदा	९०	पुण-चन्द्र	१००
दांशु	९१	गुम्हारे लिण्	१०१
होरा	९२	विर ममाधि	१०२
वन पाटल	९३	गुत्सु	१०३
पागल एधिक	९४	टद्वार	१०४
अल्प्यं भावेदन	९५	समुद्र-तट	१०६
भृगु-मरीचिहा	९७	आधाराधेय	१०७
संश्ल	९८	क्रीडास्थल	१०८
अनुरोध	९९	परायलम्ब और स्वायलम्ब	११०

काम बन्द करने का समय १११



मुम्तासी माला	३९	समय की महत्त्वता	६३
अभियार	४०	मिशन वेला	६४
अकस्मान्	४१	मुम्बत	६५
राज्या	४२	इयत्ता	६६
धोडाई और अगाधता	४३	अनंत संगीत	६७
दुष्प्रयोग	४४	अभिमान	६८
अना, वराया	४५	गुण	६९
आनन्द की शोभ	४६	मदरी	७०
वर्चिष	४८	प्रतिष्ठ	७२
इलापनीय स्वाध	४९	जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति	७३
हमों के अर्थ	५०	अभीष्ट आदेश	७४
स्वयम्	५१	संकीर्ण वच	७५
मुन्दरा कीडा	५२	भवन, सिद्धि	७६
विद्वान्मोहन	५३	माला	७८
मधुर मान	५४	गुण स्वयं आदि हा	७९
प्रमाद	५५	इदृश की महत्त्वता	८०
अपुत्री व अना	५६	अतिविश्व	८१
मुम्तासी माला	५७	माला	८३
मन्त्र का ज्ञान-रत्ना	५८	स्वयं	८४
अन व म आदि-माला	५९	इव व माला	८५
अन व म माला	६०	अ व म	८६
अन व म माला	६१	अ व म माला	८७
अन व म माला	६२	अ व म माला	८८
अन व म माला	६३	अ व म माला	८९
अन व म माला	६४	अ व म माला	९०
अन व म माला	६५	अ व म माला	९१
अन व म माला	६६	अ व म माला	९२
अन व म माला	६७	अ व म माला	९३
अन व म माला	६८	अ व म माला	९४
अन व म माला	६९	अ व म माला	९५
अन व म माला	७०	अ व म माला	९६
अन व म माला	७१	अ व म माला	९७
अन व म माला	७२	अ व म माला	९८
अन व म माला	७३	अ व म माला	९९
अन व म माला	७४	अ व म माला	१००

विद्या		
क्रांति	९०	पूर्ण-चन्द्र
होरा	९१	तुम्हारे लिए
वन पाटल	९२	चिर मनाधि
पागल परिह	९३	मृत्यु
अन्य भावेदन	९४	वृद्धार
सुग-मरीचिदा	९६	समुद्र-तट
सदेह	९७	आधाराधेय
अनुरोध	९८	क्रोडास्पल
	९९	परावलम्ब और स्वावलम्ब
		काम बन्द करने का समय
		१११
		१००
		१०१
		१०२
		१०३
		१०४
		१०६
		१०७
		१०८
		११०

तुम्हारी माया	३९	समय की महायन्त्रा	६१
अभिसार	४०	मिथुन चेला	६४
अकस्मात्	४१	सुखन	६५
शङ्का	४२	त्वरा	६६
धोखाई और अगाधता	४३	अनंत संगीत	६७
दुरुपयोग	४४	अभिमान	६८
अपना, पराया	४५	सुध	७०
आनन्द की शोभा	४६	प्रहरी	७१
यन्त्रित	४८	प्रतिकूल	७२
श्लाघनीय स्वार्थ	४९	जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति	७३
कर्मों के अर्थ	५०	अभीष्ट आदेश	७४
स्वयम्	५१	सकीर्ण पथ	७५
तुम्हारा पीछा	५२	स्वनः मिद्धि	७६
सिद्धाचलोकन	५३	माला	७८
मधुर मान	५४	तुम स्वयं आरहे हो	७९
प्रमाद	५५	उद्देश की सफलता	८०
अधुरी याचना	५६	प्रतिविम्ब	८२
तुम्हारी रचि	५७	रुचि	८३
संताप की शीतलता	५८	स्थान	८४
अभाव में आविर्भाव	५९	दून-आगमन	८६
अनादि सगीत	६०	आकषण	८७
तुम तो मेरे पास हो	६१	अशान्ति में शान्ति	८८
जागृति	६२	स्वाध	८९

विद्या		
कांठ	१०	दूर्योधन
होरा	११	तुम्हारे लिए
बन पाटल	१२	चित्त समाधि
पागल पयिष्ट	१३	मृत्यु
अनर्थ भावेदन	१४	उदार
सुगन्धविद्या	१५	समुद्र-मठ
संदेश	१७	आधाराधेय
अनुरोध	१८	छोडासफल
	१९	परावलम्ब और स्वायत्तम्ब
		काम बन्द करने का समय
		१००
		१०१
		१०२
		१०३
		१०४
		१०५
		१०७
		१०८
		११०

साधना-कार

की

अन्य रचनाएँ

सलाप — सामिक कथनोरकथन ।

।=)

भावुक—मनोहर कविताएँ, स्वर

लिपि सडिन । ॥)

प्रयास—साधना क दग का,

वात्सल्य रम-पूणं गद्य-

काव्य । ।=)

सुधांशु—मनोवृत्ति-सूक्तक वच-

कोटि की कहानियाँ ।

३।)

प्रकाशक

भारती-भंडार

राजपाट, बनारस सिटी

## साधना

### प्रार्थना

अपने पद-पद्म-पराग से मुझे अपने घट को नित्य मॉजने दे  
और उसके मधु-भकरन्द से इसे पूर्णतया भरने दे; यही एक  
मात्र प्रार्थना है।

## साधना

हे नयनरत्न नोकर नृमन्त्रों को शान्त करने के लिए अपने आपको धरम देना है। यह नन की साधना में तुझसे सीखना है।

हे मानस नृ निरन्तर मोती के समान उज्वल, निर्मल और रम्य तरङ्गें उठाया करता है। तिनके सुख में मग्न होकर मुवर्णसरोज भूमा करते हैं और निरन्तर तुझे मकरन्द दात देते रहते हैं। नृ उमें सादर प्रहण करके फिर उन्हीं के समूल नाल पुष्ट करने में प्रयुक्त करता है। जय समस्त सर पहिल और राजरस विकार हो उठते हैं तब उन्हें तेरे भिवा कौन आश्रय दे सकता है ? यह मानसी साधना में तुझसे सीखना है।

हे पादप फलों के बोध में नृ भुक जाता है और तेरी डारें टूटने लगी हैं। पर नृ अपना नियम नहीं छोड़ता। क्योंकि बुभुजितों को तृप करके उनकी आँखें खोलना तेरा प्रण है। बुद्धि की सफलता भी यही है। और इसे मैं तुझसे सीखता है।

चातक, नृ अपनी ज्वलन्त कामनाओं को मय ओर से एकत्र करके गह स्वानि को बूँद पर जगाता है और नृ अपनी धुन का इतना पक्का है कि माँस मर उसी का रट लगाये रहता है और उगों एक बूँद में अमृत पान के समान टुक जाता है। तेरी उस पर इतनी अनुसंगमर्था प्रवृत्त कामना है कि नृ उसमें मिल कर अपने अहम्भाव का अभाव नहीं कर देता। वरन केवल इसी

जिसे आत्मभाव बनाने मन्ना है कि निम्नतर तमबी आत्म  
जैसे लाभ से आनन्द वा सुख दला करे । यह आत्मभावमय  
सामन्ता से साधना में सुभने मोग्यता है ।

अतः मोगी इन सब साधनाओं वा उद्योगों क्या है ? एक मोग  
की कि मैं प्राणेश से मिल कर हूँ ।



## सेवा

तेरी सेवा ही में मुझे अकथ, अतुल और अनन्त आनन्द है ।

मैं कदापि स्वतन्त्र नहीं होना चाहता । न अपनी सेवा के बदले कुछ चाहता हूँ ।

स्वतन्त्रता की निरङ्कुशता और उच्छ्वलता के दुःखों को मैं जानता हूँ और उनसे बहुत डरता और दूर भागता हूँ ।

तेरी सेवा में मुझे जो गर्व तथा आनन्द प्राप्त होता है वही इतना है कि मैं उससे फटा पड़ता हूँ, फिर मुझे बदले की अपेक्षा कहीं ?

अपनी सेवा से मुझे न हटा, न मुझे उसमें भेदभाव करने दे ।

## रहस्य

क्या तेरी मत्ता इसी में है कि तू अपने ही को सगुणभक्त, नाशवान् और मिथ्या मान ले ?

क्या तेरी चेतना यही है कि तू अपने ही को मृत और जड़ समझ कर अपने ही से दूर भागे ?

क्या तेरे आनन्द का ऐसा ही रूप है कि तू अपने गाने में अपने ही को धोखा दे, छले और दूर ले जाय तथा इसी में अपनी सफलता समझे ?

हे सच्चिदानन्द, मुझे समझा दे कि इसमें क्या रहस्य है और इसका क्या अर्थ है ?



## भूल

मैं समझता था कि जिस प्रकार रंग विरंगे खिलौने देकर माता-पिता पुत्रों को प्रसन्न करते हैं उसी प्रकार तूने भी यह विचित्र सृष्टि हमको दी है।

फिर तू इसे मुझे अलग क्यों करता है? क्या खिलौने धीरे धीरे लड़के विकल किये जाते हैं?

या मैं भूल रहा हूँ? इसे छोड़ा कर तू मुझे अपनी छाती से लगा कर चूमना चाहता है। वह सुख—जिसके लिए बच्चे खिलौनों को स्वयं फेंक देते हैं।











# अनुराग-विराग

... .. नव मंग हृदय सुन्दरारा गुण ।

... .. का नुमने इतने प्रेम से बन

... .. मर दिया है और उमे छि

... .. मे यह इतन देगने उसको तथा अ

... .. तुम यह जान हा । अहा ! तुम्ह

... .. तुमने क्या क मारे अपने मिलने

... ..

... .. नीका जता है और मु

... .. भाग । यह विरह र

... .. हा रहा है । इस

... .. ना रही है जो स

... .. नाव को

... .. क वि

... .. नाव है नव मी

... ..

... .. यह बाटिका तुम ।

... .. अरे प्रेम पर

... .. इतना बगमन्द है कि इसका ।

... ..

लेकर तुम इसके 'शं-कर' बनते हो उसमें ऐसी कुभावना करने में यद् पर कौन पाप, अनर्थ और नीचता होगी !

क्या स्वयं वही जड़ माया के फन्दे में नहीं फँसा है जो उसे सर्वत्र माया ही माया देख पड़ती है ?







## आनन्द-गीत

मेरे गीत आनन्द-सौरभ से दमे हुए हैं ।

तुम्हारे पाद-नन्द के स्वर्ग से मेरा मन-अशोक लदवदा कर दूत उठता है और उसके योद्ध से नत होकर आनन्दानन्द धन-राने लगता है । वह आनन्द, जिससे मैं स्वयं नत हो जावा हूँ ।

तुम्हारा नम-चन्द्र देख कर मेरा मानस-रत्नाकर हो जावा है और अखरट आनन्द के गीत गाने लगता है । और तुम्हारी धृता का क्या कहना । तुम उत्तर पीपुष वर्षण करके उसे अनृतनप दना देते हो ।

निध. भला जब तुम अपने करों से मेरे हृत्कनल को खोलते हो तब वह कैसे न खिल कर आनन्द-भरन्द दगावे और सारे तर को उसने नम कर दे ।

अदुराज. तुम हुनुनों के कोप और सौरभ के सागर से सज कर मेरे मन-पिच्छ से मिलते हो । फिर वह आनन्द से पागत होकर पञ्चम-गान की धुन बाँध के अपने प्राण की पयुस्तु-कटा को पक्ष दिने दिना कैसे रह सकता है ?

मयूर वो नेत्र को विलोक कर केवल इतना ही प्रसन्न होता है कि उसको अपने नृत्य और गीत से प्रकट कर देता है । पर इसका आनन्द इतना अजर है कि अपने गीत के नृत्य ने उसका हृत्त परिषप देने की चेष्टा करके वह अपने को धन्य धन्य सम-न्ना है ।

## प्रकृति और कला

मैंने तुम्हें अपनी प्रकृति अर्पित कर दी है। तो भी मैं तुम्हारे पास अपने प्राकृतिक रूप में नहीं आता। मैं सज कर तुम्हारे पास आता हूँ। क्या लोकलज्जा से ? नहीं। कला के सहारे मैं तुम्हें और भी मोहित करना चाहता हूँ।

परिणाम उलटा होता है। तुम मेरी ओर तो ध्यान नहीं देते, उसी के देखने में लीन हो जाने हो। और उसी की आलोचना में समय घीत जाता है।

हे प्रियतम, अब मुझे अपना मिथ्या-विश्वास मालूम हो गया। अब मैं तुम्हारे पास निम्सन्न होकर आऊँगा। तुम मेरा प्रकृत रूप देखो और उसी की आलोचना करो।

## प्रेम-परिचय

जब मैं तुम्हारे सामने नाचने लगता हूँ तब तुम मेरी ओर एकटक देखते हुए मुझ पर सुधा घरसा कर मुझे ऐसा मत्त क्यों कर देते हो कि मेरी गत विगड़ने लगती है और मेरे पैर टॉप नहीं पड़ते। क्या तुम्हें इसी में सुख मिलता है ?

तुम्हारा घेटक कैसा विलक्षण है कि मैं तो तुम्हें मोहित करने को नाचता हूँ पर तुम उलटा मुझे ही मोहित करके अपना मनमाना नाच नचाते हो !

मैं समझा। मुझ पर तुम्हारा प्यार मेरे प्रेम से कहीं घड़ा हुआ है। इसी से तुम मेरा मन धार धार अपनी ओर खींच लेते हो।

पर, हे प्रियतम, इसकी क्या आवश्यकता ? मैंने तो तुम्हें आत्मसमर्पण कभी या कर दिया है। यस अय तो—मुझे छाती में लगा लो।





## कृपालु कर्णधार

हे मेरे नाविक, यह कैसी घात है कि जब मेरी नाव मैन-घार में थी तब तो तुम्हें हटा कर मैंने टॉड ले लिये थे और सर्गव तुम्हारे आत्मन पर आत्मन होकर यज्ञ भारी खिरिया घन बैठा था। पर जब वह घार से पार होकर गम्भीर जल में पहुँची तब मैं हार कर उसे तुम्हारे भरोसे छोड़ता हूँ।

तब तो नाव घार के सहारे बह रही थी, खेने की आवश्यकता हीन थी। इसी से मेरी मूर्खता न खुली। पर अब ? अब तो इस गम्भीर जल से चतुर नाविक के बिना और कौन नाव निकाल सकता है ?

परन्तु मैं तुम्हारी बड़ाई कित्त मुख से कहूँ ! तुम मेरी मूर्खता और अनिमान तथा अपने अपमान की ओर नहीं देखने और सप्रेम हॉड लेकर नाव किनारे की ओर चलाते हो।



## भातुरता

मुझे तुम्हारे पास पहुँचने की जल्दी भी पड़ी है और मैं तुम्हारे मन्दिर के मार्ग पर कब से चल भी रहा हूँ। फिर भी मैं तुम्हारे पास अब तक पहुँचा नहीं।

इसका कारण है। औत्सुक्य के नारे मैं बार बार पीछे फिर कर देखने लगता हूँ कि कितनी राह कटी और इसमें समय नष्ट होता जा रहा है।

परन्तु इसमें एक उपकार हुआ। ज्यों ज्यों समय बीतता है त्यों त्यों मेरी बिरहव्यथा भी बढ़ती जा रही है। अब मुझमें एक एह भी तुम्हारे दिना रहा नहीं जाता। लो, मैं अपनी आँखें बन्द करके तुम्हारा ओर बढ़ता हूँ।



## कच्चे घट में अमृत

तुम अमृत को धार धार कच्चे घटों में भरते हो और मैं उन्हें गलने देगता हूँ।

मुझे अचरज होता है कि अमृत के पात्र धन कर भी वे क्यों नष्ट होते हैं और मैं पुकार उठता हूँ कि तुम्हारा अमृत सूटा है।

तुम कुछ धोलते नहीं और मैं समझता हूँ कि तुम निरुत्तर हो गये।

पानी दरसने से मैं मिट्टी को गलने देगता हूँ। पर वही गली मिट्टी जब हरी हो जाती है तब मेरी आँखें खुलती हैं। मैं जो उन गले हुए घटों की ओर देगता हूँ तब मुझे माझूम होता है कि उनके प्रत्येक कण को वेध कर मुझ ने उसे अनरता प्रदान था है।







## केवल तुम्हीं

जब तुम मेरे पास आये तब मैं तुम्हारे लिए विलकुल तैयार न था, पर तुमने उस पर ध्यान न दिया और मेरे पास बैठ गये।

मैं अपनी मंमटों में फँसा था सो मैंने तुम्हारी और देगा भी नहीं। किन्तु तुम मुझे जिस उपकरण की आवश्यकता होगी, देते जाने।

मैं अपनी धुन में मग्न था।

मग्न्या के समय शारीरिक शान्ति के कारण—कुछ मान-मिथ शान्ति में नहीं—मैं कामों में विग्न हुआ।

किन्तु ही अन्तरङ्ग मित्रों को मैंने विठा रक्का था। काम में विमुक्त होने पर उनमें वार्तालाप करने को कहा था। सौषा था कि जी बहलेगा। पर देगा कि वे सब के सब चत दिये। उनमें इतना धैर्य कहाँ! टहरे एक तुम्हीं। धन्य!

मैं गद्गद होकर तुम्हारे चरणों में लोटने लगता हूँ और अपनी धिन्ताओं को चिरकार के लिए मूव जाता हूँ।

## सफल-काम

तुम्हारे कर-कान-पल्लव अर्हनिशि मेरे ऊपर दान-वर्षा कर रहे हैं। अब भी तुम्हें काननाएँ कहीं से रह सकती हैं।

तुम्हारे पद-अशोक की मेरे सिर पर नित्य छाया है। इससे तुम्हें शोक नहीं रह गया।

मैंने अनन्त काल से इस मानस को पकड़ल बनाया था कि तुम्हारे पद-बहुज इसमें विकसित हों। आज वह अर्थ सिद्ध हो गया और उनके राग से यह रक्षित हो रहा है।

नदनों से वारि इस लिए बहाया था कि उनमें तुम्हारा वदन-वारिजात प्रस्तुति हो। आज वह लालसा पूर्ण हुई और अब मैं निरन्तर उसे आनन्दाशुओं से सींच रहा हूँ।



## वास्तविक मूल्य

मेरी कृतियों को वे तुम्हारे समान पर ले जाने वाले हैं। मैं सिद्ध सब देव का लौकिक।

मैंने मेरे शत्रु को मारना शुरू कर दिया। पर किस भाव में, वह नहीं मरना। शत्रु का हाथ बल्ले का, मरना शुरू कर दिया। मैं तो उनको दानों को सब ही मरना।

एक दिन वे न आए। मरना हो गई। मुझे अपनी कृतियों में सिद्धों को शत्रुता के हाथ देव कर दिखाना हुआ। मैं हाथ का हाथ पर लेता हूँ। पर सिद्धि न हुआ। मरना सिद्धों कृतियों को शत्रुता का-दारे दानों पर देव का पर सिद्ध सिद्धों न होंगे पर कृतियों होने कृतियों का रूप है।

सिद्धों को लेने के लिए पर लेना शुरू कर लेना।

एक ही तरह कृतियों शुरू, सिद्धों, पर देवों का कृतियों सिद्धों के सिद्धों के ही न सिद्ध। एक ही तरह ही सिद्धों सिद्धों ही, कृतियों ही, सिद्धों ही, कृतियों ही, कृतियों ही।



## असम्भय

मैंने सुना है जो काव्य अध्यास उपर किया है एक और को  
मेरे पुत्र करना मेरा फलव्य है और जो सुने पुत्र करने की  
जारी भी नहीं है, दूसरी और उसका करना सुने, असम्भय  
जान पढ़ता है ।

जितना बड़ा यह काम है, उतना ही छोटा मैं हूँ, और पुत्र के  
साथ मेरा हृदय अलग था ।

अब सुनी बसन्तो, मैं क्या करूँ ?

सुन कहते हैं—“असम्भय का नाम न लो, इस सम्भय  
शिव से असम्भय बनी ।” मैं निश्चय हो जाता हूँ और नन-  
दिल होकर प्राणपण से काम से लग जाता हूँ ।

## निरुद्धदेश निर्माण की सफलता

मैं एक सूखी नदी के किनारे निरुद्धेश पैदा था। ती पर्वतों लगा सौ मीने इधर उधर फैले पत्थर के ढोके उठा उठा कर उममें इम पार से उम पार तक रखना प्रारम्भ किया। कुछ समय तक यही काम चला। अन्त को मैं, पत्थर का बिलन हुआ।

आज, वर्तमान में, वह नदी वेग में बढ़ रही है। बगारे पार के कुछ प्रथम क्षण में दिजने, दूसरे में मुगने, और तीसरे में धार में बहने दिगाई पड़ने हैं। पानी प्रतिपत्त बढ़ता जा रहा है, पर मुझे उम पार जाना आवश्यक है। और आज मुझे बड़ी निरुद्धेश चुनी हुई पत्थर की पंक्ति सेतु का काम देनी है।

## असम्भव

मैंने सुमये जो दार्ढ्य व्यपने ऊपर लिया है एक और जो  
असं पृग वरना मेरा धर्मव्य है और उसे सुमे, पृग वरने परी  
जल्दी भी पड़ी है, दूसरी और उमका वरना सुमे, असम्भव  
जान पड़ता है ।

जितना बड़ा था वाम है उतना ही छोटा मैं हूँ, श्रीःसुख्य से,  
आरे मेरा हृदय उल्लस रहा है ।

अस सुमरी वतायो, मैं क्या कहूँ ?

सुम कहते हैं—“असम्भव का नाम न लो, इस सम्भव  
द्विच मे असम्भव वती ।” मैं निश्चय हो जाता हूँ और नत-  
द्विच होकर भासुपण मे वाम मे लग जाता हूँ ।







## जगत् का पागल

तुम कुछ जानते हो ? साग जगत् तुम्हें पागल कहता है ! और कहे कैसे न ? यदि तुम्हें उसका पूरा भरोसा होता तो मैं उसी मार्ग पर चलता । पर उममे तो तुम्हें सहारा देने बात कोरे हे ही नहीं ।

तुम्हें विरयसनीय आश्रयदाता तो तुम्हीं मिले, इसलिए मैं तुम्हारे ही मार्ग पर चलता हूँ । जानते हो, सब स्वार्थी होते हैं ।

पर तुम्हारे मार्ग में ऐसी क्या बात है कि उस पर चलने मे मैं पागल कहा जाता हूँ । मेरे स्वामी, तुमने तो अपनी सभी नीति जगत् में उदडी रखी है । हे विरयात्मा, ऐसा क्यों ? हे दयानिधे, तुम्हें बता दो कि संसार को इस मुग में बट्टिचल रखने की निटुराई तुमने क्यों की है ।

## तुम्हारी माया

मैं तो अपना सर्वस्व तुम्हें दिया चुका फिर तुम अपने को मुक्तते क्यों छिपाते हो। क्या तुम्हें इसी में सुख मिलता है कि मैं तुम्हारे लिए उद्योग करूँ और तुम बैठे बैठे देखो ?

किन्तु नहीं, मैं भूल कर रहा हूँ। तुम्हारा और मेरा सम्मिलन तो अनादि है। यह तो तुम्हारे मोहन मन्त्र का प्रभाव है कि मैं तुम्हें दूर समझता हूँ और मिलने का उपाय करता हूँ।

मैं विमल प्रभा के पास कितने काल लौं रहा हूँ। परन्तु तुमने मेरी आँखों पर ऐसी पट्टी बाँध दी है कि अब यदि उसकी एक रश्मि भी उसमें पैठ जाती है तो मेरी आँखों में चकाचौंध होने लगती है। और उसे खोलने में तो मैं इतना डरता हूँ जिसका ठिकाना नहीं। तुम्हारे इन्द्रजाल ने मुझमें यह संशय उपजा दिया है कि इसके खोलते ही आभा के मारे मेरी आँखें फूट जायेंगी।

तुमने मुझ पर न जाने कौनसा आवेश कर दिया है कि जिस रंगपट्टी के पीछे के दृश्यों पर मैं जान देता हूँ उसी को हटाते डरता हूँ।

भला, इस सब से तुम्हें कौन आनन्द मिलता है ?

## अभिसार

मेरा अभिसार भी कैसा अनायास है ।

मादों को अंगरी गम है । कान कान बादना ने आकारा को आन्ध्रादित कर लिया है व माना अन्धकार में मार्ग न पाने में यही अटक गय है । बिजना तक का कहीं पना नदी । क्या वह इन आले शब्दों में ठंडी पड़ गई है या अन्धकार के मार चञ्चना चपला का भी धन पटल में निकलने का माहम नहा ?

ऐसे समय में प्राणनाथ में मिलने निकला हूँ । न तो मेरे पास दीपक है न मुझे मार्ग माहम है न उनका निवासस्थान ही । श्वी पटुपूर्ण है, वह मेरे पैर पकड़ कर और प्रचल पान पन पन पर, मेरे कानों में, मुझे ऐसा दुम्माहम करने को मना करता है ।

पर मैं चल पड़ा हूँ ।

प्राणेश कहीं बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । उनकी चिन्ता की प्रतिध्वनि मेरे हृदय में हो रही है, जो मुझे स्थिर नहीं रहने देती और सागर की ओर भागीरथी की ध्वनि में उगी और आर्य्य हुआ, बना जा रहा हूँ ।

मुझे मूक नहीं पड़ना पर मेरे पैर टूट टूट पड़ने हैं ।

## अकस्मात्

यह पय सुन्दर दर्यों से पिरा हुआ है। सुहावने लिंगध नयन वृत्त अपने करों की इत पर छाया किये हुए हैं। पर मेरा ध्यान इन सब की ओर नहीं जाता। मैं अपनी धुन में आगे बढ़ता जाता हूँ।

कव मैं चला, कव प्रातःकाल का स्वागत पक्षियों के कोमल और मधुर करुण ने किया, कव दोपहर की सूचना पवन की सनसनाहट ने दी, कव लिंगध पक्षियों की अपने करों से स्पर्श करके उन्हें अनुराग से किसलयों के सदृश बनाता हुआ सूर्य विदा हुआ, सुन्दे कुड्ग नाशुन नहीं। कव उसके विदा होते ही नमस्तर में लाखों नलिनी खिल उठीं, कव चन्द्रमुखी रजनी आई, इतका भी ज्ञान नहीं।

अकस्मात् सुन्दे रोनाश्च होता है। मैं पुलकित हो जाता हूँ। प्रवेद-कर के आविर्भाव से मेरा शरीर चन्द्रचुम्बित चन्द्र-कान्त की भौति हो जाता है। तब नानों मेरी आँखें खुलती हैं और मैं अपने को तुम्हारी बाँहों में, तुमसे चुम्बित होता हुआ, पाता हूँ।

## अभिसार

मेरा अभिसार भी कैसा अनोखा है ।

भादों को अंधेरी रात है । काले काले बादलों ने आकाश को आन्धरादित कर लिया है, वे मानो अन्धकार में मार्ग न पाने से चली अटक गये हैं । चिजली तक का कहीं पता नहीं । क्या वह इन आले बादलों में ठही पड़ गई है या अन्धकार के मारे सञ्चलना चपला को भी घन पटल में निकलने का साहस नहीं ?

ऐसे समय में प्राणनाथ में मिलने निकला हूँ । न तो मेरे पास टॉपर है न मुझे माग मादम है न उनका निवासस्थान हा । टूटो पट्टपण है वह मेरा पैर पकड़ कर और प्रचल पवन पन पन पर मेरे कालों में मुझे ऐसा टुम्माहम करने को मना करना है ।

पर मैं चल पडा है ।

प्राणेश कही बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । उनकी चिन्तना की प्रति प्रति मेरा हृदय में हो रही है जो मुझे स्थिर नहीं रहने देती और सागर की और भागीरथी की भाँति मैं उमो और आकृष्ट हुआ चला जा रहा है ।

मुझे मुझ नहीं पडना पर मेरा पैर टोक टोक पडने हैं ।

## अकस्मात्

यह पथ सुन्दर हरियों से भिन्न हुआ है। सुहायने मित्र  
मदन वृत्त अपने घरों की इम पर लाया किन्हीं हुए हैं। पर मेरा  
ध्यान इन सब की ओर नहीं जाता। मैं अपनी धुन में आगे  
बढ़ना जाता हूँ।

बस मैं खला, बस धातःपाल का स्वागत परियों के बोनल  
पौर मधुर वगड ने किया, बस दोपहर की सूपना पदन की  
सनसनाहट ने दी, बस मित्र परियों को अपने करो से स्पर्श  
करके उन्हें अनुगत से किसलयों के सहस्र बनाता हुआ नृप्य  
बिना हुआ, सुने हुए मारम नहीं। बस उत्तके बिदा होते ही  
नभसर से लाने गतिना मिल ली, बस अन्तुमो रजनी आई,  
हमबा भी जान नहीं।

अब भाव सुने, रोमाञ्च होता है। मैं पुलकित हो जाता  
हूँ। प्रवेद-बस के आदिभाव से मेरा शरीर अन्तुमिद अन्तु-  
बस की भीति हो जाता है। तब माने मेरी आँसे खुलती हैं  
और मैं अपने हो मुहारी दोहो से, हुमने सुनिदत होता हुआ,  
जाता हूँ।





## ओढ़ाई और अगाधता

जब मैं देखता हूँ कि मैं कातर होकर तुमसे प्रार्थना करते करते क्षान्त हो जाता हूँ. और यद्यपि वे वाचनार्थ तुच्छातिबुद्ध हैं. पर तुम उन पर ध्यान तक नहीं देते—उन्हें देना कहीं का—तब मैं तुम पर कठोरता का कलङ्क लगाता हूँ और तुम्हारी दृष्टि पर अविश्वास करता हूँ।

परन्तु जब मैं उस नाली की ओर ध्यान देता हूँ जो तुम क्षुण्ण की एक कली को छोड़ कर अन्य कलियों इन लिए तो फेंकता है कि वह क्षुण्ण परम विशाल और सुन्दरतम फूल अलङ्कृत होकर फूलानुसूय. तब तुम्हें अपने ओढ़ापन से तुम्हारी अगाधता की याद लग जाती है।

## शङ्का

मेरा हृदय बारबार शङ्कित क्यों होता है ? क्या इम डर से कि तुम मेरे बहुत यत्न में मिले प्यारों हो कहीं विलग न जाओ ? नहीं आत्मविश्वास की कमी में मुझे अपने प्रेम पर शङ्का होने लगती है ।

सदैव समीप रहने हुए भी मैं तुम्हें दूर क्यों समझता हूँ ? क्या तुमने मुझे ऐसा विश्वास करा दिया है ? नहीं अपनी भूल में मैं ऐसा समझ बैठा हूँ । क्या तिरन्तर धला पृथ्वी को हम अबला नहीं कह रहे हैं ?

तुम्हें हम अगोचर क्यों कहते हैं ? क्या वास्तव में ऐसी बात है ? नहीं, हमने अपनी इन्द्रियों को गमे हीन और तुच्छ कामों में फँसा रक्खा है कि उनसे यथार्थ काम लेते ही नहीं । जो नदी पाताल फोड़ कर निकलती है वह भी क्या कभी मिट्टी से नहीं बाँध दी जाती ?

## ओढ़ाई और अगाधता

जब मैं देखा हूँ कि मैं कातर होकर तुमसे प्रार्थना करते करते मरना हो जाता हूँ, और यद्यपि वे वाचनार्थ तुम्हारा तुम्हारा हैं, पर तुम उन पर ध्यान तर नहीं देते—उन्हें देना यहाँ पा— मर मैं तुम पर पठोरता का फलड़ लगाता हूँ और तुम्हारी दया पर अविश्राम करता हूँ ।

परन्तु जब मैं उन भागों की ओर ध्यान देता हूँ जो पुन-  
क्षुप की पर बलों को छोड़ पर अन्य बलियों इन लिए तोड़  
पेकन हैं कि वह क्षुप परम विरक्त और सुन्दरतम ब्रह्म से  
अज्ञान होकर पूजा न मनाय, तब तुम्हें अपने अज्ञान और  
तुम्हारी अगाधता की धार लग जाती हैं ।



## शपना, पराया

कौटिल्य भाग्य को देखते ही मैं बचपन से बहिष्कृत माना हूँ।  
मैं सुभाष, संजना की वधु। मैं तो बचपना ही, जिस दिन मैंने  
बचपन से ही बचपन में सुभाष की शपथ को देखी होता बचपन ही  
बचपन से शपथकर्म सुभाष को देना हुआ है।

मैंने, जो शपथ की तो नहीं। यह शपथ सुभाष की ही  
सुभाष, संजना की वधु। मैं सुभाष को देखता हूँ तो शपथकर्म  
मैंने ही शपथकर्म को देना हूँ। मैं ही शपथ हूँ।

मैंने, यह शपथ शपथ ही तो हूँ मैं ही शपथकर्म शपथ  
मैंने ही शपथ शपथ ही।

मैंने ही शपथकर्म शपथ शपथ ही मैं ही शपथकर्म शपथ  
मैंने ही शपथ शपथ ही।









## श्लाघनीय स्वार्थ

मैं कैसे कहूँ कि तुम से प्रेम करता हूँ।

अनंत दुःख की प्राप्ति के लिए अपने को ही याचना से बचाने के लिए मैं आत्महत्या कर जाता हूँ।

कौशल अपने बर्षों का पालन-पोषण कराने के लिए उन्हें दूसरे नाड़ में रख आती है; कुछ अन्य पक्षियों को पुरवती बनाने के लिए नहीं।

तब तो मैं स्वार्थी और आत्मप्रेमी मात्र ठहरा। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कहीं रहा, परन्तु जब तुम मेरे हृदय से पृथक् बैठें हो कि क्या हम तुम दो हैं, तब मैं निरुत्तर हो जाता हूँ।

## कर्मों के अर्थ

तुमने अपनी मुरली की मधुर तान से मुझे मोह लिया और जो जो जी में आया मुझमें कराया। मैं ऐसा मोहित हो रहा था कि जो कुछ करना पड़ा उसका कुछ भी अर्थ न समझ सका।

संसार मेरे उन कर्मों का मनमाना अर्थ करता है। किसी को उनमें सौन्दर्य और सूक्ष्मता दिखाई देती है और कोई उन्हें बीभत्स और भद्देपन का नमूना समझता है। परन्तु जब उनका अर्थ मैं ही नहीं समझ सकता तब दूसरे क्या समझेंगे? तुम उनके नियन्ता हो, तुम्हीं उनके अर्थ जानो।

स्वामी, मुझे उनका अर्थ और हेतु समझने की दरकार नहीं। मुझे तो उस तान की चसक पड़ी है, वही सुनाने रहो और जो जो जी में आवे वही काम लो।



## तुम्हारा पीछा

जिस प्रकार प्राची के कुङ्कुमाभ अनुराग का पीछा पार्वण चन्द्र, जिस प्रकार मुरद पटना का पीछा स्मृति, जिस प्रकार मंगध्वान का पीछा मार की कुरु, जिस प्रकार प्रथम वर्षा का पीछा पृथ्वी का मुरभित उन्झाम और जिस प्रकार पर्वत-स्यली के मिहनाद का पीछा प्रतिध्वनि करती है उसी प्रकार व्यर्थ मैंने तुम्हारा पीछा किया। क्योंकि मेरे देखते ही देखते तुम अदृश्य हो गये।

अन्तु, मैं हतोत्साह होकर बैठ गया। मेरी आँखें बन्द थीं। मैं तुम्हारे ध्यान में मग्न था। अकस्मान् पपीहा 'पी कहाँ, पी कहाँ' बोल उठा। जानें वह मेरा समदुर्ग था या मुझे गिरमा रहा था। चाहे जो रहा हो, मेरा ध्यान उचट गया। मैंने गिरन होकर त्रिघर में उसका शब्द आया था उधर देखा। पर आश्चर्य ! देखता क्या हूँ कि तुम मेरी बगल में बैठे हो।





## प्रभाव

तुम्हें तुम्हारे के लिए मैं सादर मना करता हूँ पर मैं सादर निरवकाश। सादर पर भीड़ थी इन्हीं तुम्हें करना पड़ा। लोग मेरी ओर देखने और मजाबद ही प्रशंसा करने लगे। मला-प्रशंसा निम्न पत्रों नहीं कर देती ? मैं भी अपना प्रत्यक्ष जेरा तुम्हें कर उन्हें अपनी मजाबद दिखाने लगा। आनन्द में मेरा हृदय गहरा था।

यहाँ तक कि अभिमान में तुम्हें जन्मा बना दिया। तुम भी सादर की भीड़ में गड़े हो गये और तुम्हें देखने लगे, पर मैं तुम्हें न देखता।

मजरा को भीड़ छूट गई और तुम्हारे दान के पौन्ड से मेरे सौतेले लौटने लगे, तब मेरी आँखें खुलीं।

परन्तु अब ही क्या करता था। हाय ! इस दिखाने में मैं तुम्हें न देख सका।









## तुम तो मेरे पास हो

मैं कुटी बन्द करके आसन पर सगर्व बैठा था। उस कुटी को मैं विरव समझता था और अपने को उसका महाराज। अपने मद में मैं चूर था।

न जाने कैसे तुम भीतर आगये। मन्त्र-मुग्ध की भाँति आसन का एक कोना मैंने तुम्हारे लिए छोड़ दिया। तुम बैठ गये। मैं धीरे धीरे खसकने लगा। उस पर तुम्हारा अधिकार बढ़ने लगा। मैं भूमि पर आगया। तुम आसन पर पूर्णतः आसीन हो गये।

मैं निर्निमेष नयनों से, अवाक् होकर, तुम्हारी सुन्दरता निरखने लगा। मुझे उसमें प्रतिक्षण नवीनता मिलने लगी। श्वर मेरे हाथ तुम्हारे पाँव पलोटने लगे।

अकस्मान् प्रचण्ड पवन चलता है। कुटी हिलने लगती है। घनघोर घटा घिर कर दरस्तने लगती है। विद्युत्पात होने लगते हैं। प्रलयकाल उपस्थित होता है। पर मैं अशान्त, विचलित या भीत नहीं होता है। क्योंकि तुम तो मेरे पास हो।







## चुन्दन

दिन भर मैं उनके लिए अपने को सजाने और गर्वपूर्वक दर्शन में देखने में लगा रहा ।

सन्ध्या हुई और सूर्य के वियोग से प्रकृति निस्तब्ध हो गई । मेरे दृश्य बदल गये । मैं भी थक कर सो गया ।

वे कृतार्थक आये पर नमता के कारण मुझे जगाया नहीं । केवल मेरा चुन्दन किया और चल दिये ।

इस कौमल चुन्दन से मेरी कठोर निद्रा भंग हुई । मैं आँसू नल कर चञ्चलता देखने लगा । उनके चरणों की चाँप सुनाई पड़ती थी । मैंने उनके पीछे दौड़ना चाहा । पर चुन्दन ही के आनन्द में मैं इतना विह्वल और कृतकृत्य हो रहा था कि मेरे पैर न उठे ।





## अनन्त संगीत

मैं अपने गीत सुनने की याचना करता हुआ, संगीत भर में हुआ। पर किसी ने सुनने की अनिच्छा प्रकट न की। मेरा एक मात्र उद्देश्य था प्रसन्न होना।

अन्त को मैं निराश होकर पर लौट गया था कि गजपथ ने एक नवीन मञ्जीवना का गीत। मुना कि सन्नाह् का रहे हैं। मैं बैसा ही गड़ा रह गया। देखा क्या है कि ये पौरुषियादे मेरी धोर का रहे हैं। पान का जाने पर लज होकर मैंने आशा पूछी। वे हँस कर बोले—“सारे, मैं तुम्हारे पीछे सारे संगीत में हुआ है, पर तुम्हारा तो ध्यान ही मेरी धोर न था। इनने अब तक तुम्हें अपनी यह याचना न कर सारा कि तुम्हें अपना गान सुनाओ।” याचक से याचना ! जिसके लिए मेरे संगीत ने तुम्हें विद्वय दिया उनकी याचना स्वयं सन्नाह् करे। अहोभाग्य।

पुनरुक्ति होकर मैंने गान आरम्भ किया। प्रेन के नारे मेरा करुण भर रहा था : इनमें मैं प्रति पद पर रुकता था। तुम्हें सँभातने के लिए सन्नाह् ने मेरा साथ दिया। उनके नव-नीरदनिर्गौरविन्दक निनाह् में मेरा स्वर भित कर समस्त सन्नाह् में गूँज उठा। नारे धरइ निरुड उनी की प्रतिध्वनि करने लगे।

तब सन्नाह् ने धीरे से कहा—“जद् प्रतिध्वनि तो अनन्त काज न होगी रहेगा आओ, हम मुन चने



किन्तु—भुके फाटो तो खून नहीं । मैं निष्प्राण पापाण-  
प्रतिमा की भौंति वहीं निश्चल रह गया । अरे, यह तो वही उस  
वेरा में वहाँ गये थे, अब यहाँ घँटे हैं !

पर वे निराकुल थे । सरल, सम्मित भाव से उन्होंने कहा—  
अच्छे रहे ! एक तुच्छ परिहास भी न समझ सके !



## प्रहरी

करी रात में जाता है। नींद का कुछ भार नहीं हलकी रात में ही सोना सक्ती। रात भर पढ़ाई की नींद में बह निकल हो रही है और प्रत्यक्ष में रात की समस्त शक्ति रक्षक कर के होने से नींद बर्बाद कर गई है।

इस वजन निम्न के रक्षक का भार नहीं उतर या नींद में समतुल्यक दूरा करने का सुने हर और अनिमत है।

यह समस्त संसार लक्ष्य है। न कही वन है, न चौर-बाई का दर। तनिक तनिक से भी खडकी को, समस्त विद्या, तुमने के निर में वन दूर रोजा लगे रहे हैं। इस निर में सुखा रहे हैं और नींद संसार का कोलाहल भी उन्हें बौका नहीं करता।

यह भी सुख से सोईंग।

## प्रतिफल

आती पक्षी गीतें गीतों काटा था। पर, अब मैं उठ कर  
बेचता हूँ कि वह तो गलियाँ हो गईं। सब समय गीतों में तब  
हुआ। गीतों के पहले गीतों मुझे जगते अनुगत था जगती प्रकाश  
इस समय प्रकृति को गीतों में अनुगत है और बुद्ध कान में वह  
ओ मेरे समान विभिन्नान्न हुआ चाहती है।

सम्पुष्टि होने वाले मीनों के साथ साथ विप्र मानव  
भी सम्पुष्टि हो रहा है।

मेरे महाशयियों की चिन्ता ही वस्तु मेरे पास है पर  
बिना बुद्ध के उन्हें से नहीं गये। अब सारी बात इनकी रक्षा  
करके शान चालू गीतों बनेगा इन वस्तुओं को मुझे इन तक  
व्युत्पन्न करेगा।

## जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति

जब मैं जागता रहता हूँ तब मेरा मन सोता रहता है और प्रियतन के स्वप्न देखता करता हूँ।

जब मैं निद्रित होता हूँ तब मेरा मन जाग जाता है और उनके साथ विहार करने लगता है तथा मैं उसके सुषुप्त स्वप्न का आनन्दोपभोग करता हूँ।

परन्तु जब सुषुप्तावस्था आती है तब तो मैं और मेरा अन्तःकरण दोनों ही तद्रूप हो जाते हैं। क्योंकि उस समय प्राणेश के गादातिघ्नन का सुषुप्त मुझे मेरे सर्वस्व सहित मूर्च्छित कर देता है।

मेरी एकान्त कानता है कि मैं नित्य उसी दशा में रहूँ।













## रुचि

देवता के उस मन्दिर में जहाँ पूर्ण राजस विभव है, यदि तुम्हें कोई गाने के लिए कहता है तो मैं स्वीकार नहीं करता। लाग लाय आपह करने पर भी मैं अपने हठ से नहीं हटता।

पर उस देव-मन्दिर में जहाँ बहुत दिनों से कोई आता जाता भी नहीं, अर्चा की पौन पर्या, जो जीर्ण हो कर भग्न हो रहा है, प्रकृति दया पूर्वक कोई से जिसकी मरम्मत किया करती है, जिस पर छाया करने वाले बट-शृङ्ग की भी कमर मुक गई है और जिसके सामने का सरोवर जाने कब का सूखा पड़ा है केवल पानी ने नहीं और दानकों की खाई उनकी लाठ उसके अन्ध-पत्थर सरस अथ लो खाई है, उस देवालय में दिना कितों के फटे, स्वयं अपनी इच्छा और प्रणयता से, अमु-अर्घ्य-प्रदानपूर्वक अपनी इच्छा-सन्त्रों की उत्तम से उत्तम और करण से करण दान सुना कर में श्रुतार्थ होता है।







## दूत-आगमन

नुम्हारे दूत की धनीला मैं कितनी देर से कर रहा था। अपना सँदेसा भेजने को मेरे हृदय में सरोर उठ रही थी। और, अपने सँदेसे से यह पार शर बना कर बिगाड़ रहा था। जो भावना उठती थी उसमें जो न भरना था। यही होता था कि उसमें भी बड़ा दुःख सँदेसा ले। इसी तर्क-वितर्क-सर्ग कल्पना के आनन्द में मैं निमग्न हो रहा था।

नुम्हारा दूत आ पहुँचा। पर यह क्या, मैं उसे देखते ही अपनी सारी कल्पना और सब सँदेसा सब भाव कर यही पृथ्वी हूँ—कहाँ विषयम न हूँ बना ?











## विदा

मित्रों, जब मैं तुम लोगों से विदा होने लगूँ तब मुझे पार प्रसन्नता से विदा करना। मुझे सचे जी से आशीर्वाद देना कि मैं अपनी साधना में गिद्ध होऊँ।

यदि तुम मुझे मुने जी से आजा न रोगे तो मेरे वैर बंधे से पड़ेंगे, मेरा जी तुम में अटक रहा होगा और मैं एकदिवस से अपने अमीट में प्रवृत्त न हो सकूँगा। फिर उगड़ी गिद्धि का कौन आशा।

तब, यदि तुम मुझे सचे जी से आजा रोगे तो उनके मन-प्रभाव से मेरा हृदय और भी हड़ हो जायगा और मुझे निष्प्रभेद सन्नता होगी।

मित्रों, क्या तुम यह नहीं चाहते कि मुझारे कृत मया की लगन पूरी हो जिससे उसे नित्य और निरन्तर मुझारी सेवा और सद्बुद्धि का मोक्षाय मिले ?







भी एक मुख है। जब तुम उसे ही नहीं पा सकते तब वहाँ का निरन्तर मुख तो तुम्हें एक अपरिवर्तनशील घोम, नहीं यातना हो जायगी। अरे, बिना नव्यता के मुख कहीं? तुम्हारी यह कल्पना और सद्कल्प निनान्त मिथ्या और निस्तार है, और इसे छोड़ने ही मैं तुम्हें इतना मुख मिलेगा कि तुम छक जाओगे।'

परन्तु उसने मेरी एक न मुनी और अपनी राम-मोटरिया उठा कर चलता बना।

## अव्ययं शब्देन

शब्द शून्य किमान व समझता है कि अपने शेषशक्ति से  
तुन वा शब्द शून्य किया है उस पर उमन ध्यान भी न दिया  
होना शब्द शून्य व करके वदत वदत कर काटी है और  
इतना क म न व उल्लेख रहा है। एम महान के मन में ऐसी  
वदत वदत शब्द शून्य भा नहीं व महता यही शिखा सुभे.माते  
वदत है।

करीबन वदत वदत शून्य नहीं व परी ही परी शब्दक  
नहीं वदत वदत वदत वदत वदत वदत है। वदत वदत शिखरे  
वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है  
वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है।

वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है।

वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है।  
वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है और वदत  
वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है और वदत  
वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है

करी वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है  
वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है और वदत  
वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है।

वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत वदत है।

## मृग-मरीचिका

अरे, तू धैर्य क्यों नहीं धरता. चिन्तित होने को क्या बुरा है ?

जित्त दृष्टा के कारण तू भटकता फिरता है वह यद्यपि दुन्दे नहीं है परन्तु उसके लिए भटकने में तुम्हें क्या सुख नहीं मिलता ?

जित्त समय पर्यन्त अपने अघजले तरुकोटरों में प्रचण्ड निराला को किसी प्रकार दबा कर पुट-पाक की तरह पक-से रहे हैं. उस समय भी तू जीवन के लिए इतनी दौड़ धूप कर रहा है, क्या यह थोड़ा है ?

जो तुम्हें इतत मरुभूमि में लाया है, जित्तने तेरे मृगनयनों के तारों में अपनी विनल ज्योति से सना कर तुम्हें यह मरीचिका दिखाई है, इतत मरीचिका का कारण भी जित्तका प्रकारा ही है, वही तेरी दारुण रूपा बुन्ध कर तुम्हें पार लगावेगा ।



## अतुरोध

हे मन्मथ जगद, विविध के विनी अदरय होने से उठ  
क तुम मरे नमो मन्मथ को हा लेते हो. आत्म-सन्मथ नहीं  
के मन्मथ प्रकृत करते हो और मन की सुई बरत कर उसे  
रुका रहे हो।

मैं भी तुम्हें एक बरत चुका हूँ। ये मन्मथ मन्मथ  
तुम्हें प्रकृत प्रकृत मन्मथ पर बरत रही हैं. तुम उन्हें  
क्यों बरतते से प्रकृत क्यों करते हो ?

मन्मथ, तुम उन्हें प्रकृत प्रकृत में प्रकृत प्रकृत देकर बर  
क्यों करते हो।

मैं बरत नहीं। एक बर उन्हें मन प्रकृत बरते. जो  
नहीं बरते। और, वह उन मन्मथों के प्रकृत प्रकृत में प्रकृत बर  
क्यों करते।

तुम मन्मथ हो, उन मन्मथ में तुम विनी चुकी रहते।



## तुम्हारे लिए

मान के लोगों को बहुतेरी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती और वे माँगने मेरे पास आते। मैं द्वार बन्द करके बैठा रहता और वे खटखटा कर लौट जाते। दूसरे दिन, मार्ग में, यदि वे जहना देते तो मैं कह देता कि “मैं ने तो समझा था कि तबन होगा।”

यदि कभी भूल से कपाट खुले भी रह जाते तो उनके पैरों में चौपे मुनते ही मैं व्याज-निद्रित हो जाता; या दिया बुझ जाता। जब वे इसकी शिकायत करते तो कह देता कि—“दिन भर का हारा धका रहता हूँ, पड़ते ही सो जाता हूँ।” किंवा ‘चिन्तावश दीपक बालने की सुघ हो न रही।’

अगर कोई और भी पक्षा होता तो वह, जब जहाँ तामना होता, अपेक्षित वस्तु माँगता। पर मैं गिड़गिड़ा कर कह देता—“वह मेरे पास नहीं, घर देख लो। हाय ! तुम्हारी सेवा करने से वञ्चित रहने का मुझे दुःख है।”

इस प्रकार संसार पर मैं ने अपनी कपट-वृत्ति का क्षय और व्यय करके अपने निष्कपट-भाव एवं सर्वस्व का रक्षण तथा पोषण किया है। जिससे आज मैं तुम्हारे सामने अपना, सुरक्षित, शुद्ध हृदय से सञ्चित और परिवर्द्धित सर्वस्व लेकर उपस्थित हुआ हूँ।





# मृत्यु

मृत्यु ! तुझसे पद पर संसार में मेरा और फान है; तू मुझे अनन्त जीवन प्रदान करेगी ।

जब सारा संसार मुझे छोड़ देता है तब तू मुझे अपनाती है, और मुझे जर्जरित पिश्वर से छुड़ा कर नये नये दृश्य दिखाती है ।

आधि व्याधि की असीम यातना से छुड़ाने के लिए तू ममता के मारे चिरशान्ति का विशाल वितान तानती है ।

जब जब तू मेरे पास आई है तब तब मैं ललक कर तुझसे मिला हूँ । और अपने प्रेम की पूरी परीक्षा दे चुका हूँ । तूने उसमें मुझे पषा पाया है और फल में क्या इस धार तू सदैव के लिए मुझे बन्धन-विमुक्त कर देगी ?

## उद्धार

दुःख में उडिप्त होकर मैंने निरक्षय किया कि ऐसे जीवन में मरण भरा ।

पावस में नदी बढ़ कर असीम हो रही थी । मदानद भी उसकी प्रतिस्पर्धा न कर सकता था । उसके प्रचल वेग और तुमुन तरङ्गों का क्या कहना । मैंने अपनी नाव खोली और सोचा कि आज जल-समाधि लगेगी ।

नाव पलक मारने धारा में पहुँची और बर्त भेरा में बकर खाने लगी । लहर के धंड़ों ने उसका पेंदा गोंड़ दिया और शीघ्रता से उसमें पानी भरने लगा । अब मैं अर्धीर हों च्छा । पानी में दम घुट कर प्राण निचलने की कल्पना का भी न सह सका ।

आज मुझे जीवन का मोत ज्ञान हुआ । उसमें दुःख क्यों ? दुःख तो जीवन के अभाव में, अहमंग्यता में है ।

मैं हमी में मगला था अब इतना दुःखिल था । बाल्य होकर, चिन्म प्रकार शरीर याग करनी पड़ी थी, इससे पहले दुःख नहीं जान पड़ता था, मिदना आज इस क्षण में तिरन हरे के प्रलय माय में हुआ ।

मैं हृदय में विप्लव का दुःखमें कर्म्य करने का प्रण किया ।

जो मय र्मिष्ट दुःखों न ज्ञे करी दिनी हुई थी, आज उरुत हुई । और, मैं मय हो में का चिन्म ही चंर लेता

बन । वह बिन्दु लगे लगे । पर इस बीच में वह मेरे आस-  
पास के अन्तर्गत ही और दूर ही अपने निकट हो गई । इस  
एक क्षण में मेरा अस्तित्व संकलन दृष्ट हुआ ।

उस क्षण में ही मैं और शिव, कर्मोत्तर जीवन मिले ।



## काम वन्द करने का समय

दिन बीता, सन्ध्या आ गई। प्रकृति ने आकाश पर जो कुङ्कुमा चलाया था वह उसके भाल पर गुलाल फैलाकर जाने कहीं अदृश्य हो गया और अब वह, प्रकृति, उस पर चारों घोर बुका धीटि रही है। यह काम वन्द करने का समय है।

भू-मण्डल पर प्रकाश की परिधि प्रतिक्षण सङ्कीर्ण होती जा रही है और अन्धकार की धुँधली छाया उदासी बढ़ रही है। दिन भर का श्रान्त पक्षि-मण्डल अपने नीड़ों को लौट रहा है। क्या यह काम वन्द करने का समय नहीं है ?

पर यह हो कैसे सकता है। क्या इस निरन्तर कर्मशीला प्रकृति में कोई भी किसी क्षण अकर्मण्य रह सकता है ?

वह लो, मेग मित्र आ रहा है। अन्धकार में से उसकी दीप्त देह निकली पड़ती है। वस, मैं अब यही काम करूँगा कि अपनी दिन भर की करतों पर उसके संग विचार करूँ।

हरिः ॐ तत्सन्

## परावलम्ब्य और स्वावलम्ब्य

पपीहा कैसा सुन्दर राग अलापना है। कोयल का बुद्ध कूजन कैसा कमनीय है। परन्तु उनका यह क्रम नित्य क्यों नहीं चलता ? पपीहे ने अपने सुर को बादल के हाथ बेच रक्का है। जश्न घन पटल उने आकाश को आभूषित करता है तभी उसके सुने मन पर भी भाव-पटल उमड़ने हैं और उन्हें वह अपनी तान से व्यक्त करता है। बादल बरस गया, पपीहे का गान भी हवा हो गया।

कोयल का हृदय वसन्त से अनुरक्त है। शत्रुराज ने सत्र सजा कर अपना रूप दिखाया और उसने अपनी हृदय-गाथा सुनानी शुरू की। इधर प्रीत्य ने इसका राध्यापहरण किया, उधर वह अपना मन मार कर मौन हो बैठी।

पर उपा की यह बात नहीं। वह स्वयं रागधती है। क्यों हो या शरद, वसन्त हो या प्रीत्य, उसे सब बराबर। वह तो अपने रंग में मग्न है। नित्य अपना हृदय अनन्त दिग्ब के सामने खोल रखती है और उसी के आनन्द में विलीन हो जाती है।

## काम बन्द करने का समय

दिन बीता. सन्ध्या आ गई। प्रकृति ने आकाश पर जो इङ्कुना चलाया था वह उसके भाल पर गुलाल फैलाकर जाने वहाँ अदृश्य हो गया और अब वह, प्रकृति, उस पर चारों ओर दुःखा छोट रही है। यह काम बन्द करने का समय है।

नू-भण्डल पर प्रकाश की परिधि प्रतिक्षण सङ्कीर्ण होती जा रही है और अन्धकार की धुंधली छाया उदासी बढ़ रही है। दिन भर का शान्त पक्षि-भण्डल अपने नीड़ों को लौट रहा है। क्या यह काम बन्द करने का समय नहीं है ?

पर यह हो कैसे सकता है। क्या इस निरन्तर कर्मशीला प्रकृति में कोई भी किसी क्षण अकर्मण्य रह सकता है ?

वह लो, मेरा मित्र आ रहा है। अन्धकार में से उसकी दीप्त देह निकली पड़ती है। घस, मैं अब यही काम करूँगा कि अपनी दिन भर की फरनी पर उसके संग विचार करूँ।

हरिः ॐ तत्सत्